हिन्दी साहित्य

को

लेखिकाओं का योगदान

संपा. उषा यादव

प्रधान कार्यालय :
गीना प्रकाशन
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी 127021 (हरियाणा)
मोबाइल : 9466532152, 8708822674
ई-मेल : ginapk222@gmail.com

व्यवस्थापक गीना प्रकाशन ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली से पुस्तक प्रकाशित करवाकर मुख्य कार्यालय से वितरित की।

ISBN : 978-93-89047-26-4
© : लेखक
मूल्य : ₹ 700 /-

प्रथम संस्करण : सन् 2021

प्रकाशक : सानिया पब्लिकेशन
323, गली नं. 15,
कर्दमपुरी एक्सटेंशन,
दिल्ली-110094
मोबाइल : 8383042929, 7292063887
Email : saniapublicationindia@gmail.com

आवरण : एम. सलीम

शब्द-संयोजन : मुस्कान कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110094

मुद्रक : विशाल कौशिक प्रिंटर्स
जगतपुरी विस्तार, दिल्ली-110093

Hindi Sahitya Ko Lekhkayon Ka Yogdan
Edited by Usha Yadav

Price Rs. 700.00

अनुक्रम

1. सुशीला टाकभौरे की कहानियों में अभिव्यक्ति दलित चेतना 13
उषा यादव
2. शैक्षणिक समस्याएं : सुशीला टाकभौरे की कहानियों में 18
डॉ. नरेश कुमार सिहाग
3. संत महिलाओं का हिन्दी साहित्य को योगदान 22
गजानन्द मीणा
4. महादेवी वर्मा के काव्य में विरह वेदना 32
डॉ. अमनदीप कौर
5. प्रवासी लेखिकाओं का हिन्दी साहित्य को योगदान 38
अनामिका भुसाल
6. बदलती सोच का आईना-दोहरा अभिशाप 43
डॉ. अनिला मिश्रा
7. शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में नारी-जीवन का चित्रण 50
डॉ. बिजेंद्र कुमार
8. प्रभा खेतान के उपन्यासों में व्यक्त नारी चेतना 58
बिन्दु के. पिल्लाई
9. डॉ. प्रभा पंत की कहानियों में विविध आयाम 64
चंद्रावती जोशी
10. नारी अंतर्मन की झलक : उषा प्रियम्वदा की कहानियों में 73
डॉ. अनिता पाटिल
11. प्रवासी लेखिकाओं का हिंदी साहित्य को योगदान 79
डॉ. सर्वमंगल स कमतगी
12. महिला काव्य लेखन और सामाजिक सरोकार 83
डॉ. शारदा प्रसाद
13. 21 वीं सदी की महिला साहित्यकार और साहित्य 91
डॉ. गीतू खन्ना

21 वीं सदी की महिला साहित्यकार और साहित्य

डॉ. गीतू खन्ना
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
गुरु नानक गर्ल्ज कॉलेज,
यमुनानगर (हरियाणा)
geetugngcollegeynr@gmail.com

साहित्य समाज का दर्पण और प्रतिबिंब कहा जाता है। समय के अनुसार बदलते हुए साहित्यिक आंदोलनों के तहत लेखन का स्वर बदलता रहा है और बदलता रहेगा। वर्तमान समय में उत्तर आधुनिकता, भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद, जैसे स्वरों ने न केवल भारतीय समाज में आम आदमी की जिंदगी में घुस–पैठ कर दी है। वहीं महिला साहित्यकारों का साहित्य भी अछूता नहीं है। 21 वीं शती में जीवन और साहित्य में तीव्रगामी परिवर्तन आए हैं। 'अहम् ब्रहासि' व भूमंडलीकरण और बाजारवाद में बदल गया है। दया, माया, ममता को बाँटने वाली अबला सशक्तीकरण की और बढ़ रही हैं। गाँवों के लोग नगरों में, नगरों के महानगरों में और फिर आगे विदेश में जाकर बसना चाहते हैं। नए आकाश को छूने लगे हैं। हाशिए में रहने वाले लोग मुख्य भूमिका में आ गए हैं। सूचना प्रौद्योगिकी और अंतर्जाल ने 21 वीं शती के साहित्य को नवींन द्वार पर का खड़ा किया है। आज नई चुनौती, नई तेवर, नई संभावनाएं के साथ महिला साहित्यकारों ने भी अपना वर्चस्व स्थापित किया। संचार क्रांति, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के बीच वर्तमान जीवन की विसंगतियों और समस्याओं को उठाकर सामाजिक धरातल पर संवेदनाओं को उभारकर सूक्ष्मता और गहनता के साथ समाधान प्रस्तुत करने में 21 वीं सदी की महिला साहित्यकारों का साहित्य सक्षम है। प्रमुख महिला साहित्यकारों का साहित्य का वर्णन इस प्रकार हैं।

डॉ. मैत्रेयी पुष्पा

'अल्मा कबूतरी'

डॉ. मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' सामाजिक यथार्थ और नारी अस्मिता की खोज, यथार्थ मानव जीवन की सच्ची अनुभूति है जिसके द्वारा हम अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं और भावनाओं का अनुभव करते हैं। सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य है समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण। यह उपन्यास बुंदेलखंड की कबूतरा जनजाति के माध्यम से समाज में जन्मजात अपराधी घोषित की गई तमाम जनजातियों का दस्तावेज प्रस्तुत करता है। डॉ. मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' की कथावस्तु के लिए जनजाति को चुना जिसे अब तक समाज में कोई पहचान या स्थान प्राप्त नहीं हो सका। साथ ही उन्होंने इस उपन्यास में नायक को न चुनकर नायिका को चुना है। अल्मा कबूतरी नायिका प्रधान उपन्यास है अतः लेखिका ने इस उपन्यास को लिखते समय समाज के यथार्थ चित्रण के साथ–साथ आदिवासियों और खासकर महिला आदिवासियों की समस्याओं की मुख्य रूप से रेखांकित किया है। मुख्य रूप से उपन्यास का तानाबाना स्त्री शोषण तथा स्त्री संघर्ष को लेकर बुना गया है।

मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास मुख्य रूप से दो बिंदुओं पर संघर्ष की गाथा उकेरता है। एक और यह कबूतरा समाज के संघर्ष, उत्पीड़न और शोषण की गाथा है वहीं दूसरी ओर कदमबाई, भूरी और अल्मा के रूप में नारी अस्मिता के संघर्ष को हमारे सामने लाने में समर्थ है। उपन्यास के एक भाग में राणा से कदमबाई कहती है '...जुग जुग के दगाबाज.... राणा तू इनकी मिलकर कज्जा हो जाएंगे। हम तो इनकी बोली–बानी बोलते हुए भी इनसे अलग हैं। इनकी रोटी हमारी टुक्क अलग नहीं पर भूख–प्यास की कीमत अलग है।'[1]

'अल्मा कबूतरी' में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी लेखनी के माध्यम से एक ओर बुंदेलखंड की जनजाति कबूतरा का सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत किया है वहीं अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत नारी की गाथा को बहुत ही सशक्त तरीके से अभिव्यक्त किया है। इस उन्यास के पुरूष पात्र राणा की लड़ाई वास्तव में दलितों की अस्मिता की लड़ाई है, जिसका साकार स्वरूप अल्मा के व्यक्तित्व के माध्यम से खुलता है। अंत में अल्मा को मिले राजनीतिक अधिकार के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने समाज को एक संदेश भी दिया है। कबूतरा जनजाति का आंतरिक संघर्ष दलित जीवन के आंतरिक अस्तित्व की

जद्दोजहद को प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि राजनीतिक अधिकार के द्वारा इस नवीन समुदायी पहचान के संभावित मार्ग को खोल देता है। कबूतरा से श्रीमती श्रीराम शास्त्री बनने वाली अल्मा चुनाव लड़ेगी, यदि चुनाव लड़ेगी तो राजनीतिक अधिकार प्राप्ति के पश्चात असंख्य सामुदायिक चेतना के असंख्य पहचान और प्रगति के द्वारों को खोल देगी।

'गुड़िया भीतर गुड़िया'

समकालीन हिन्दी साहित्य में अनेक स्त्री लेखिका आत्मकथाएँ लिख रही है और लिख चुकी हैं, परन्तु मैत्रेयी की आत्मकथा अलग इसलिए है कि लगभग अन्य लेखिकाएँ अपने पति को तलाक देकर या पति से मुक्ति पाकर आत्मकथाएँ लिख रही हैं और लिख चुकी हैं। परन्तु मैत्रेयी अपने पति के साथ रहकर अपनी आत्मकथा दो खण्डों में लिख चुकी हैं। पति के साथ रहकर अपने विगत संघर्षशील जीवन, साहित्यिक शोषण तथा शरीरिक सम्बन्धों को खुलकर कहने का साहस मैत्रेयी की लेखनी में है। कहानी उपन्यासों के माध्यम से पुरूष–सत्ता को चुनौती देती मैत्रेयी न जाने कब पति की आँखों में इस कदर चुभने लगती है कि मैत्रेयी जी का उठना बैठना तक मुहाल हो जाता है। श्रीमती शर्मा जब मैत्रेयी जी पुष्पा में परिवर्तित हो जाती है, तब तक गृहस्थी के सारे समीकरण ही बदल जाते हैं – ''अपनी ही छत के नीचे अपने ही माने–जाने वाले घर में क्या मैं कम जख्मी हुई...दोनों कंधे छिल रहे थे, बाँहें भी टूटने लगी। किससे कहूँ? किससे बताऊँ? बेटियाँ भी नहीं समझ पाएगी कि मां के लिए लेखिका के रूप में साहित्य का लोकतंत्र कितना सामंतवादी है और घर में पिता का पति रूप दिन पर दिन संस्कारों में ऐसा ग्रस्त हुआ जाता है कि पुरूष वर्चस्व के वे कठोर सेनापति अपने अनुशासन के प्रतिबद्ध... ।''[2]

संवेदनशील रचनाकार, एक डाक्टर की पत्नी मैत्रेयी को आत्मकथा लिखने की यातना ने अनेक तरीके से प्रताड़ित किया। गुलामी की यातना को जो सहता है, वही जानता है और जो जानता है वहीं पूरा सच कह सकता है। आत्मकथा लिखने के बाद मैत्रेयी इस निष्कर्ष पर पहुँचती है – 'आज कह सकती हूँ कि अच्छी रचना दुःख, यातना और अपमान की चुनौतियों से जन्म लिया करती है।'[3]

'कस्तूरी कुंडल बसै'

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी देवी (माँ) और मैत्रेयी पुष्पा के जीवन

की सम्पूर्ण कहानी के बारे में बताया गया है। यहाँ कुछ ऐसी बातें भी हैं जो मैत्रेयी के जन्म से पहले घटित हुई, मगर उन बातों को माँ ने टुकड़ों–टुकड़ों में बताया। मैत्रेयी पुष्पा ने अधिक संजीदगी से मानव मन के अनछुए कोनों को प्रदर्शित किया है। मैत्रेयी पुष्पा के व्यक्तित्व की तारीफ करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं, 'कुछ अलग और नया था जो मुझे तुम्हारी तरफ खींच रहा था। गाँव, कस्बों का परिवेश खेतिहर संस्कृति के बनते बिगड़ते समीकरण सम्पत्तियों को लेकर की जाने वाली फौजदारियाँ कोर्ट, कचहरियाँ अंकठ सैक्स और स्त्री के उभरते व्यक्तित्व की तेजस्वित चुनावों–पंचायतों की बदलती तस्वीर अपराधी जनजातियों के मुख्य धारा में शामिल होने की जद्दोजहद, तुम्हारा अपना बिन्दास जीवन'। [4] मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवम्बर 1944 में अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा गाँव में हुआ। मैत्रेयी जन्म से ब्राह्मण हैं। मैत्रेयी की माँ का नाम कस्तूरी देवी, पिता का नाम हीरालाल और बाबा का नाम मेवाराम था। गाँव वाले मैत्रेयी को पुष्पा के नाम से पुकारते थे लेकिन पिता मैत्रेयी कहते और बाबा उसे प्यार से लाली कह कर बुलाते थे। मैत्रेयी पाँवों की ओर से जन्मी थी इसलिए दाई न कहा था, ''उलटा बालक जिन्दगी भर सताता है''। खुर्जा वाले पंडित ने उनका नाम मैत्रेयी रखा। पिता भी माँ से कहते थे, ''तू जानती है मैत्रेयी की कथा, मैत्रेयी कौन थी ? ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी। उन्होंने अपने ऋषि पति से कोई सम्पदा नहीं माँगी, कोई सुख नहीं चाहा, बस ज्ञान माँगा था।' बचपन से उसे गाँव वालों ने 'पुष्पा' नाम से पुकारना शुरू किया। लेकिन पिता के मरते समय जो आवाज गूँजी थी, वह थी मै....त्रे....यी। यह बेटी को पिता द्वारा दिया हुआ नाम था। उस समय मैत्रेयी अट्ठारह महीने की बच्ची थी। मैत्रेयी के जन्म के वक्त पिता ने कहा – 'यह हमारी बेटी, जब इसका जन्म हुआ, ग्रह नक्षत्रों ने रास्ता दिया। देवता और ऋद्धि–सिद्धि साथ हो लिये। पंडित ने यही कहा था न? और यही हमने देखा, हमारे घर में अन्न और दूध कि सारे गाँव में अमन चैन। मैत्रेयी आई है हमारे घर।'[5]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' केवल आत्मकथा नहीं बल्कि मैत्रेयी पुष्पा की उस हिम्मती, कर्मठ और जिद्दी माँ कस्तूरी की कहानी है जिसने सारा जीवन क्रांति करते ही काटा। यह आत्मकथा मैत्रेयी पुष्पा का जीवन वृतान्त मात्रा न होकर एक ऐसा साहित्यिक दस्तावेज है जिससे एक गवंई लड़की के एक महत्त्वूपर्ण लेखिका के रूप में व्यक्तित्वातरण के फेनमिना को समझा जा सकाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने दिल्ली जैसे महानगर में अपने जीवन के चालीस साल अच्छे खासे मध्यमवर्गीय ढंग से गुजारे। फिर भी उन्होंने अलीगढ़ और

झाँसी अंचल के गाँवों को केन्द्र बनाकर कहानियाँ व उपन्यास लिखे।

मैत्रेयी पुष्पा के 'स्त्री के गाँव' में गाँव के साथ स्त्री के सारे समीकरण बदल जाते हैं। यह परम्पराओं को नये सिरे से परिभाषित अस्वीकृत करती है। गाँव के सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप करती है और जल, जंगल, जमीन से अपने सम्बन्धों की पुनर्परीक्षा करती है। मैत्रेयी की स्त्री अकेली नहीं गाँव की पहचान है जो वहाँ के जीवन में हर कहीं उपस्थित है। वह गाँव का स्नायुतंत्र है, वह बदलती है तो बदले हैं गाँव के सारे समीकरण। मात्रा और स्तरीयता दोनों के स्तर पर मैत्रेयी ने जितना लिखा उतना उनके आस–पास के लेखक कम ही लिख पाए हैं। मात्रा के बोझ तले उनकी स्तरीयता दबती–कुचलती नहीं, बस उभरती ही है। मैत्रेयी के कथा साहित्य की मुख्य पात्रा (स्त्रियाँ) हमेशा से स्वयं–सिद्धा नायिकाएँ रही हैं, वह चाहे मंदाकिनी हो, सारंग हो, शीलो या फिर अल्मा या फिर कोई अन्य... वैसी स्त्रियाँ जो हमारे समाज की होने लगने से ज्यादा हमारे समाज और उसमें भी खासकर स्त्रियों के जीवन को बदलने का दम–खम रखती हैं।

डॉ. मधु कांकरिया

'पत्ताखोर'

डॉ. मधु कांकरिया द्वारा रचित उपन्यास 'पत्ताखोर' आनंद को मादक द्रव्यों में ढूंढता बचपन। वर्ष 2005 में विरचित 'पत्ताखोर' उपन्यास पश्चिमी बंगाल की चर्चित लेखिका 'मधु कांकरिया' द्वारा विरचित दो भागों में विभाजित एक ऐसे ही तरह वर्षीय नौंवी कक्षा के छात्रा 'आदित्य' की कहानी प्रस्तुत करता है जिसे परिवार, संगति व विद्यालय मिलकर 'पत्ताखोर' बना देते हैं। लेखिका ने युवाओं में विकसित हो रही नशे की आदत का अत्यन्त सजीव एवं प्रासंगिक वर्णन किया है। यह आज के आधुनिक कहे जाने वाले समाज की विशिष्टता है कि आधुनिकता की दौड़ में भागते हुए अभिभावक न चाहते हुए भी इस प्रकार का दूषित परिवेश बच्चों को दे रहे हैं जिसमें बच्चों का भोला–भाला बचपन नशे की गर्त में डूब रहा है, यही प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य व लक्ष्य है। आदित्य की माता बनश्री उसके लिए क्या आदर्श स्थापित करेगी, वह तो पति को 'एक फिक्सड डिपोजिट' मानती हुए कहती है, "अरे 'फिक्सड डिपोजिट' तो एक ही है, क्यों न कई करेंट एकाऊंट खोल दिए जाएं, जब दिल चाहे रहे दिल भरा कि एकाऊंट बंद। गृहस्थी भी संभली रहे और अपनी जिन्दगी भी खुशहाल।"[6] आदित्य माता से धीरे–धीरे दूर होता

जाता है परन्तु पिता के साथ प्रेम की अपनेपन की डोर अब भी बंधी हुई है। कहते हैं, कि बहा हुआ पानी, मुरझाए पत्तों का हरापन और बचपन ऐसी चीजें हैं जो कभी लौटकर नहीं आती।

आज अतिशय स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता के परिणामस्वरूप् आदर्श एवं परम्पराओं का नवीनीकरण हो रहा है। वैज्ञानिक प्रगति ने बच्चों में ज्ञान के साथ–साथ तर्क का विकास किया है किन्तु आदर्श एवं मूल्यों की अवहेलना व उचित मार्गदर्शन के अभाव ने बच्चों को एक ऐसा यांत्रिक परिवेश दिया है जिसमें 'मिसफिट' अनुभव करते बच्चे कभी मर्यादा को तोड़ते हैं, तो कभी नशे का व्यापार व सेवन करते हुए मानो यही इनकी नियति हो गई है। प्रस्तुत उपन्यास का अध्ययन करते हुए 'आदित्य' जैसा पात्र आशा की किरण के रूप में हमारे सामने आता है जहां हम यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि मादक–द्रव्य अथवा नशे जैसी असाध्य बीमारी का उपचार भी संभव है।

'खुले गगन के लाल सितारे'

मधु कांकरिया ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री विमर्श के अंतर्गत अपने उपन्यासों के माध्यम से लेखिका ने स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति को कलम बद्ध किया। उपन्यास 'खुले गगन के लाल सितारे' में बेमेल विवाह और सलाम आखिरी में नारी की वेश्यावृत्ति को अपनाने का मूल कारण आर्थिक विषमता को माना है। लेखिका सभ्य समाज से प्रश्न करती हैं, 'लोग कहते हैं भंगी पैदा नहीं होते, बना दिये जाते हैं, कोड़े मार मार कर पर क्या यहीं वैश्या जीवन का सच नहीं? इनमें कौन थीं जिसने चाहा था ऐसा जीवन'।[7]

सूखते चिनार

आतंकवाद की समस्या पर उपन्यास सूखते चिनार जिसमें लेखिका आतंकवाद के मूल कारण और उसमें पिसती नारी की पीड़ा को उकेरती हैं। उपन्यास में नारी अस्मिता को स्पष्ट करती है कि आतंकवाद की इस विभीषिका में नारी को ही भुगतना पड़ा है। उपन्यास में पात्र जमील को पिता द्वारा जब पुलिस के हवाले कर दिया जाता है तो उस परिवार को दोहरी मार पड़ती हैं। आतंकवाद का कहर उस परिवार पर टूट पड़ता है। पहले सेना अड्डा उस घर में अड्डा बना कर बैठी थी अब वह आतंकियों के छिपने का अड्डा बन जाता है क्योंकि जिस घर ने अपने ही बेटे को आगे बढ़ कर सेना के हवाले किया था उस घर पर सेना को शक नहीं हो सकता हैं। आतंकियों

के लिए ये घर जन्नत है, सुरक्षित है, पनाह का उचित ठिकाना है। इसी बीच घर की बेटी आतंकवादियों की हवस का शिकार हो। साथ ही आतंकवादियों को शरण देने के कारण मुजरिम करार कर जेल भेज दिया जाता है और वहीं उसे नाजायज बच्चे को जन्म देना संपूर्ण जीवन की त्रासदी को चित्रित करता है। अतः स्पष्ट है मधु कांकरिया अपने उपन्यासों में हाशिए पर धकेली गई स्त्री को केंद्र में स्थापित कर वाणी प्रदान की। नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं असुरक्षा, अकेलापन, निराशा और टूटन की पीड़ा जहां उन्हें सालती है वहीं दूसरी ओर उनका संघर्ष व विद्रोह भाव चाहे व्यक्ति से हो, समाज से हो, परिस्थितियों ने उन्हें अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति जागरूक किया है।

डॉ. सुनीता जैन

'खाली घर में'

डॉ. सुनीता जैन के काव्य संग्रह 'खाली घर में' इक्कीसवीं सदी की कविता में व्यक्त रिसते रिश्तों की अकुलाहट, 'खाली घर में' काव्य संग्रह का सृजन संसारः सुनीता जैन ने अब तक हिन्दी को 40 से भी अधिक काव्य–संग्रह दिए हैं जो अपने आप में एक नया कीर्तिमान है। चार दशक की इस सतत एकनिष्ठ सृजन यात्रा में सुनीता जैन का काव्यफलक निरंतर विस्तृत हुआ है। अपने इस नए संग्रह 'खाली घर में' उन्होंने वे सारे सामाजिक सरोकार रेखांकित किए हैं, जिन्हें वे समय–समय पर अपनी कविताओं में उकेरती आई हैं। एक ही संग्रह में संचयनित होकर ये सरोकार और सघन हुए हैं। इस बार सुनीता जैन की कविताओं में कुछ ऐसे विषय भी आए हैं जो हिन्दी कविता में अब तक अनछुए हैं। प्रवासी बच्चों के माँ–बाप का दर्द सुनीता जैन द्वारा रचित कविता 'फिलहाल' में उन वृद्ध माँ–बाप के दर्द का बयां किया है जिनके बच्चे विदेशों में बस जाते हैं और वे अकेलेपन के संत्रास को भोगते हुए जीवन जीने पर मजबूर हैं।

फिलहाल मेरी चिन्ता उन घरों की है
जिनकी हँसी और किलकारी चले गए दुबई
अस्ट्रेलिया, मुम्बई, या अमेरिका की किसी गली

... ...

मेरी चिन्ता है मेरे घर के आसपास
ऐसे घरों की जिसमें बैठा रहता है
कोई वृद्ध कुर्सी पर खिन्न सा

और कोई वृद्धा सुबह–सुबह ही अनमनी[8]

संवेदनाहीन होते जा रहे परिवार में माँ के दर्द को बयां करती कविताएं: डॉ. सुनीता जैन ने संवेदनाशून्य होते जा रहे परिवार में पानी में तड़पती माँ के दर्द को 'पानी' कविता के माध्यम से बड़ी तन्मयता से प्रस्तुत किया है

उसने बेटे से कहा, बेटा घड़े में पानी नहीं
बेटा जल्दी में था, उसने सुना नहीं।
उसने बहू से कहा, 'बहू एक गिलास पानी'
बहू ने सुना, पर रूकी नहीं।
उसने पोते से कहा, 'मुन्ने देना तो पानी
पोता देखता रहा टी.वी., हिला नहीं। [9]

भारतीय समाज में लड़कियों के उत्तराधिकारी की वास्तविकता को व्यक्त करती कविता: भारतीय समाज में लड़कियों के साथ सदियों से हो रहे सौतेले व्यवहार को डा. सुनीता जैन की कविता 'उत्तराधिकार' बाखूबी प्रस्तुत करती हैं:

पहले वे छीनते हैं, बेटियों से उनका हक,
फिर फेंकते हैं थोड़ा सा पैसा, थोड़ी खैरात
बेटों को देते सारी की सारी
जमीन, जायदाद, फिक्सड डिपाजिट
देते आसीस, अपना संग अपना साथ
और इस तरह से बेटियाँ
इस देश की, पैदा होते ही होती अनाथ। [10]

सुनीता जैन के विविध कविता–संग्रह उनके विविध रूपों के छोटे–छोटे आयाम हैं जो पाठकों के मानसिक स्तर में पैठ कर उन्हें जीवनानुकूल संदेश देते हैं। जीवन जीने का सही दृष्टिकोण इन कविताओं में हैं। वस्तुतः सुनीता जैन की कविता एक साथ ही सघन अनुभूतियों का अनूठा संसार, प्रखर बौद्धिकता से सम्पन्न, आधुनिक युग–प्रश्नों से मुठभेड़ करने का मनोबल और हृदय की अतल गहराईयों को संस्पर्श करने वाली भाषा का सामर्थ्य और काव्यात्मक संवेदन लिए हुए हिन्दी काव्य को एक समृद्धि और अपने तरह की सम्पन्नता तथा संपदा प्रदान करती है। शब्द की इस साधिका ने जिस रूप में अपने साहित्यिक यात्रा तय की है वह केवल प्रशंसनीय ही नहीं बल्कि अनुकरणीय भी है।

डॉ. किरण वालिया

'खामोशियाँ बोलती हैं'

डॉ. किरण वालिया के काव्य–संग्रह 'खामोशियाँ बोलती हैं' में मुख्य रूप से इन मानवीय समस्याओं का उल्लेख किया गया है: नारी अस्मिता की तलाश और जूझते सवाल, भ्रष्ट राजनीतितन्त्र और सामाजिक संत्रास, रिश्तों के बदलते अर्थ का कटु सत्य, मानवीय अन्तर्द्वन्द्व का त्रास, नारी अस्मिता के प्रश्नों पर कवयित्री की जिज्ञासा ऐसे अनेक मुद्दों को और गहरा जाती है, जिनका उत्तर शायद यह पुरूष समाज ही दे सकता है। अपनी कविता "रावण दुराचारी" में नारी मन के इन्हीं सवालों को पूछा गया है।

दादी तेरी कहानियों में रावण राक्षस था।
बुरा था, दुराचारी था, कपटी था।
सुन सुन कर बड़ी हुई थी।
वह इतिहास के पन्नों में सदा के लिए अंकित हो गया। [11]

आज का कलयुगी मानव कभी पिता बन, तो कभी भाई के वेश में, कभी पड़ोसी, तो कभी दोस्त बन अपनी ही बेटी, बहन, दोस्त को अपनी हवस का शिकार बनाता है और उसे सदा के लिए कभी न भरेने वाला घाव दे जाता है। ऐसे में प्रश्न उठता है :–

दादी! तेरी कहानी का रावण।
दुराचारी, पापी, दुष्ट, कपटी
कैसे हो गया ?[12]

समाज में सच की परिभाषा बदल चुकी है। रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की आड़ में आज सब कुछ सही और सच लगता है। ऐसे परिवेश में मानव संत्रस्त है, प्रश्न उठाता है पर जवाब नहीं मिलेगा, यह भी जानता है। कवयित्री 'सच क्या है' कविता में इस दुर्व्यवस्था का चित्रण करती है:–

"सच क्या है माँ ?
जो तूने कहा था,
या फिर जो आज हो रहा है
किसे सच कहें हम। आज सच बोलना पाप है
भ्रष्टाचार की जयकार है
पैसे का बोलबाला है। कातिल बना रखवाला है.....
राजनीति में सब जायज है
बता दे माँ। सच क्या है?

क्योंकि नई पीढ़ी को मुझे सच के लिए तैयार करना है। [13]

इसी प्रकार कवयित्री 'एक मुखौटा' कविता में बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से राजनीति का मुखौटा ओढ़ने वाले सफेदपोश भ्रष्ट नेताओं का चेहरा कुछ इस तरह बेनकाब करती है:

''मुखौटे बिकते हैं बाजार में
सबसे अधिक मांग है नेताओं की मुखौटों की
लगाते ही अपने रंग में आ जाता है
स्यार सा कपटी, लोमड़ी सा चालाक
गिरगिट सा दलबदलू, सिंह सा खूंखार
हर परिस्थिति में डाल लेता है खुद को। [14]

21वीं शती के तीव्रगामी परिवेश में जहां कवयित्री राजनैतिक संत्रास झेल रहे समाज का चित्रण करती है वहीं महानगरों की समस्याओं और देश के युवाओं की बदलती सोच पर भी चिन्ता व्यक्त करती है। 'घर बनाम मकान' कविता में उनका मानना है:

''गारे, मिट्टी, ईंट, सीमेन्ट से मकान बनता है
घर नहीं बनता। .....
आज लुप्त हो रहे हैं घर
महानगरों में मकान म्यूजियम हो गए हैं....
आज मुन्ना रस्ता तकता है। आज मुन्नी बहुत उदास है।
आज इन्सान बस खो गया है
भीड़ में अकेला हो गया है।''[15]

21वीं शती में जीने वाले लोग धन की चकाचौंध में रिश्तों के माधुर्य को भूल चुके हैं और असका सबसे अधिक दुष्प्रभाव गृहस्थ जीवन के आधार सम्बन्धों यानि पति–पत्नी पर अधिक पड़ा है। अपनी कविता 'गृहस्थी' में कवयित्री लिखती हैं:–

''बर्तनों की खटपट में। पैसे के खन–खन में। ।
दफ्तर के भागमभाग में, बच्चों के शोरगुल में। ।
जिंदगी के मायने कितने बदल गए
मैं भी वहीं हूँ तुम भी वहीं हो
कहने सुनने के मायने कितने बदल गए। । [16]

आज का मानव रिश्तों की टूटन और चुभन के कटु सत्य को तो भोगता भी है और रिश्तों के महत्त्व से इन्कार भी नहीं करता:–

''एक रिश्ते के मरने से। कितने रिश्ते मर जाते हैं।

✓

एक के साथ बंधे हैं। सच में कितने कितने रिश्ते!"[17]

वास्तव में रिश्तों की मिठास उन्हें मन से स्वीकार करने में है वरना रिश्ते होकर भी अजनबीपन का अनुभव करवाते हैं। मानव के भीतर की शंकाएँ और असुरक्षा अन्तर्द्वन्द्व को और अधिक गहनता से त्रस्त कर देती है। कवयित्री डॉ. किरण वालिया की कविता 'मृगतृष्णा' में इसी द्वन्द्व की स्पष्ट झलक मिलती है:–

"कुछ बूंदें बरसी हैं आज
लगता है घटा छट जाएगी
लेकिन किसी चोर दरवाजे से
एक अन्जाना सा डर छाता है मन में....
जिंदगी की पथरीली राहों में
चलते–चलते गिर न जाऊँ
उठूँ तो तुम्हारा हाथ भी न हो
तुम आ न सको, तुम थाम न सको। [18]

आदमी के भीतर का अन्तर्द्वन्द्व उसे मानसिक कैद से कभी मुक्त नहीं होने देता क्योंकि आदमी मकड़ी की तरह ही कुण्ठाओं और आडम्बरी परम्पराओं का जाल खुद ही बुनता है और स्वयं ही उसमें जीवनभर फँसा रहता है:–

"आदमी मकड़ी की तरह बुन लेता है अपने इर्द–गिर्द जाले कितने।
जाले आडम्बरों के ढकोसलों के, सड़ी गली परम्पराओं के ....
ऐसे में छटपटाता हुआ तड़पता है आदमी ...
उसे स्वतन्त्रता अखरती है।
क्योंकि वैसाखियाँ अब जरूरत बन जाती हैं
ते जाले अपने इर्द–गिर्द आप ही बुन लेती हैं।"[19]

डॉ. किरण वालिया के काव्यसंग्रह 'खामोशिया बोलती हैं' में व्यक्त उन प्रमुख मानवीय समस्याओं का आकलन और विश्लेषण करना है जो 21वीं शती के मानव समाज को उद्वेलित कर रही हैं। इस शती की हिन्दी कविता में पंजाब की यह कवयित्री एक सजग और सशक्त चेता बनकर प्रत्येक पाठक को नई प्रेरणा और दिशा देने का प्रयास करती है जो समझ और समाज के सामंजस्य में आस्था रखता है। 'खामोशिया बोलती है' काव्यसंग्रह की प्रत्येक कविता शोधपक्ष के नए द्वार खोलने का निमन्त्रण देती है।

डॉ. जयंती रंगनाथन

'खानाबदोश ख्वाहिशें'

युवा पत्रकार और कथाकार जयंती हिन्दी साहित्य में ऐसा नाम है जो स्त्री जीवन के संघर्षों का चित्रण करने वाली चर्चित लेखिकाओं में अपना स्थान बना चुकी हैं। जिन्होंने अपने उपन्यासों 'आसपास से गुजरते हुए', 'औरतें रोती नहीं' में स्त्री जीवन को ही प्रमुख रूप से चित्रित किया है। जयंती रंगनाथन का तीसरा उपन्यास 'खानाबदोश ख्वाहिशें' स्त्री जीवन से संबंधित इन्हीं तथ्यों को उजागर करता उपन्यास है। उपन्यास में प्रमुख स्त्री पात्र निधि के माध्यम से उन स्त्रियों का चित्रण है जो जीवन में अपनी ख्वाहिशों को पूरा करने के लिए छटपटाती हैं परन्तु अन्ततः उन्हें समझौता कर एक आदर्श नारी के खोल में ढलने के लिए विवश होना पड़ता है। निर्दोष निधि केवल यह इच्छा रखती है कि वह अपना जीवन अपने अनुसार जीना चाहती है और पूरी उम्र एक सुरक्षित छाँव के लिए भटकती रहती है। कहीं न कहीं स्त्री ही स्त्री के जीवन को दूभर कर देने में अहम् भूमिका निभाती है। उपन्यास में इसका खुलासा होता है, "हर जगह ढिंढोरा पीटा जा रहा था कि किसी तरह वह पुरुषों को रिझाती है, बहलाती है। चरित्रहीन है निधि। उसका कोई करैक्टर ही नहीं है। इतने देवता पुरूष से उसकी शादी हुई, तब भी उसके पांव जमीन पर नहीं टिकते।"[20] पुरूष सत्ता स्त्री को निर्दोष मानना ही नहीं चाहती और स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण इस उपन्यास में चित्रित हुआ है। निधि के जीवन में आए ये अकस्मात परिवर्तन स्त्री–जीवन की उधेड़बुन को तो अभिव्यक्त करते हैं साथ ही उसके बिखरते जीवन और दूसरों द्वारा उसके जीवन में घुसपैठ कर तहस–नहस करने की प्रवृत्ति को भी दर्शाते हैं, "दूर–दूर तक ऐसा कोई नहीं था, जहाँ जाकर वह पनाह लेती। एकमात्र खून का रिश्ता दीदी से था। आज इस घर से भी नाता टूट रहा है।"[21] निधि उस घर से निकलकर जीवनभर भटकती रही क्योंकि स्त्री खूँटे से बँधी रहे तो आदर्श नारी अन्यथा समाज की आलोचना के लिए तैयार रहे। परित्यक्ता स्त्रियों के जीवन का यही सच है कि समाज उन्हें स्वीकार नहीं करता। स्त्रियों के मन में पुरूष के प्रति दर्ज भ्रमित इच्छाओं को खुलासा करती है, "औरतों को लगता है, पुरुष उसके लिए कुछ भी कर सकते हैं। वे ऐसा कुछ नहीं करते बल्कि ऐसा बनाकर रखते हैं कि औरतें भ्रमित हो जाएं और वही करें जो पुरूष चाहते हैं। संजीव, नीरव और विश्वनाथ में कोई फर्क नहीं। अंततः तीनों पुरुष हैं। वह छलावे में रही कि दूसरा पहले से अलग होगा और

"तीसरा दूसरे से।"[22] स्पष्ट है लेखिका ने पुरूष सत्ता के कई सत्य उपन्यास में उद्घाटित किए हैं। स्त्री विमर्श की धुरी उपन्यास में उसी पर आकर पुनः टिकती है। अपने आपको खंगालती, जीवन भर झेले कटु सत्यों की समीक्षा में मग्न नजर आती है, "मैं वह दिन नहीं देखना चाहती... मैं किसी से मिलना नहीं चाहती... मुझे अब कोई बंधन नहीं रोक सकता, मैं इन सबके बीच की नहीं हूं, मैं इन सबके साथ जीने के लिए नहीं बनी, मैं इनके साथ जीने लायक नहीं... मुझे अकेले ही शाप भोगना है, मैं शापित हूं।"[23] अन्ततः वह सोचती है कि उसके जीवन जीने का तरीका ही सही मायनों में उस खोल में नहीं ढल पाया जिसका परम्परागत और रूढ़िवादी समाज सदा से आदी रहा है, "मुझसे हर कदम पर कहा गया कि हर सामान्य औरत ऐसा ही करती है। परंपरागत ढांचे और व्यवहार में बंधकर चलती है। इससे परे इच्छाएं हों, तो भी दफन कर देती है अंतस के कोल्ड स्टोरेज में। मैं ऐसा कर नहीं पाई। अपनी इच्छाओं, उत्तेजनाओं और लालसाओं को मार नहीं पाई।"[24] स्त्री–विमर्श के यह सत्य उकेरता उपन्यास स्त्री के जीवन की नींव को बनाता सिद्ध होता है, "दुरूह रास्तों पर चलोगी, तो उसकी भी आदत हो जाएगी। एक बार चलकर तो देखो। तुम्हारी तरह मैं भी कुछ दिनों पहले तक मानती थी कि औरत को पुरूष दिशा देता है। मैं अपनी तलाश में बहुत भटकी। बहुत पुरूषों में सहारा ढूंढा पर मिला तो अपने ही कंधों पर।"[25] निधि द्वारा सुफला को कहे ये शब्द स्त्री–विमर्श के कटु सत्यों को उजागर करते हैं। स्त्री यदि जीवन में अपने अस्तित्व को स्थापित करना चाहती है तो पहले उसे अपने ही कंधों का सहारा लेना होगा तभी स्त्री मुक्ति, स्त्री अस्मिता और स्त्री–विमर्श जैसे तथ्य पूर्णरूपेण अपनी सत्यता और लक्ष्य को स्थापित कर पायेंगे।

निष्कर्ष

समकालीन नारी सशक्त है। नारी विमर्श की माध्यम से नारी का जो रूप उभर कर सामने आया है जर्जर मान्यताओं को चुनौती देता है। जिससे पुरुष ने स्त्री को सम्मान देना शुरू किया। स्त्री पुरुष के परस्पर सहयोग से ही नारी के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। जो निर्भर है परस्पर सौहार्द पूर्ण मानवीय प्रेम संबंधो में सामाजिक भेद और लिंग भेद को मिटाने में, महिला को स्वतंत्रता प्रदान कर, समानता देने पर, स्त्री नियति और उसके उत्पीड़न को रोकने का काम जितनी स्वतंत्रता, स्पष्टवादिता, प्रखरता से नारी कर सकती है इसका ठोस प्रमाण 21 वीं सदी का महिला साहित्य है। [illegible] चेतना का वह मार्ग है जो वृहत्तर भूमिका निभाने की क्षमता रखती है [illegible]

परिवर्तन शक्ति प्रदान कर स्वयं को सशक्त कर समाज के प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत नारी का अब यह कहना 'कि आधा आसमान हमारा, आधी धरती हमारी, आधा इतिहास हमारा है।'[26] जाग्रत एवम् स्वतंत्र नारी वर्षा की बूंदों की तरह विकासोन्मुख होकर बसंत के फूलों की महक की तरह साहित्य जगत में विभिन्न विधाओं के माध्यम से अपनी प्रतिभा से सुवासित कर हिंदी साहित्य जगत की चुनौतियां का डट कर सामना करते हुए अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्मा कबूतरी , मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, सन् 2000 , पृष्ठ संख्या, 371
2. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, 2012 प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या, 225
3. वही, पृष्ठ संख्या, 339
4. राजेंद्र यादव, अपनी नियति पहचानो मैत्रेयी, हंस प्रकाशन, सन् 2006, पृष्ठ संख्या, 3
4. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, सन् 2007 प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या, 36
5. वही, पृष्ठ संख्या, 25
6. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2005 प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या 18
7. खुले गगन के लाल सितारे, सूखते चिनार, हिंदी समय.कॉम
8. सुनीता जैन, खाली घर में, (समग्र खण्ड 10) पुष्प पाल सिंह, संपादक, रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि. गाजियाबाद, सन् 2010, पृष्ठ संख्या, 308
9. वही, पृष्ठ संख्या, 195
10. वही, पृष्ठ संख्या, 220
11. प्रियंका भारद्वाज, गुम होती संवेदनाओं को जगाती सुनीता जैन की कविताएं में, पुष्प पाल सिंह संपादक रेमाधव पब्लिकेशन प्रा लि गाजियाबाद, सन् 2018, पृष्ठ संख्या 290
12. किरण वालिया, खामोशियां बोलती हैं, सम्या प्रकाशन, नई दिल्ली, रावण दुराचारी, पृष्ठ 26, 27
13. वही ,समय क्या है।, पृष्ठ संख्या, 19
14. वही,मुखौटा, पृष्ठ संख्या, 17
15. वही, घर बनाम मकान , पृष्ठ संख्या 52

16. वही, गृहस्थी, पृष्ठ ,82
17. वही, रिश्ते, पृष्ठ, 91
18. वही, मृगतृष्णा, पृष्ठ 45
19. वही, मकड़ी और जाले, पृष्ठ 56
20. 21वीं सदी का साहित्य, संपादक चंचल बाला, एम. एस.प्रिंटर, अमृतसर, पृष्ठ संख्या, 201
21. वही, पृष्ठ, 203
22. वही, पृष्ठ, 203
23. वही, पृष्ठ, 205
24. वही, पृष्ठ, 205
25. वही, पृष्ठ, 205
26. अरविंद जैन, न्याय क्षेत्र अन्याय क्षेत्र, दिल्ली भारतीय राजकमल प्रकाशन, 2001, पृष्ठ.93